आचार्यों के द्वारा
जन, काव्यात्मा-
य के भेद-उपभेद
होता है। प्राचीन
और नये विमर्श
आचार्यों के द्वारा
व्यों के मूल्यांकन
क नवीन काव्य
निबन्ध, कथा,
त्र, आत्मकथा,
शास्त्रीय सिद्धान्तों
कृत साहित्य की
सन में देखना-
दोनों प्रकार के
संस्कृत काव्य और
र्यों ने किया और
वस्तुत: आधुनिक
ा का उन्नयन ही

978-93-86835-73-4
9789386835734
₹ 500.00

संस्कृत काव्यशास्त्र आधुनिक आयाम
प्रधान सम्पादक
आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

संस्कृत काव्यशास्त्र आधुनिक आयाम

प्रधान सम्पादक

आनन्दप्रकाश त्रिपाठी

संस्कृत परिषद, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर म.प्र. के आंशिक आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

वैधानिक चेतावनी
पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन, फोटोकॉपी, इलेक्ट्रानिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक व प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित आलेख/आलेखों के सर्वाधिकार मूल रचनाकार/रचनाकारों के पास सुरक्षित है। पुस्तक में व्यक्त विचार पूर्णतया लेखक/लेखकों अथवा संपादक/संपादकों के हैं। यह जरूरी नहीं है कि प्रकाशक इन विचारों से पूर्ण या आंशिक रूप से सहमति रखे। किसी भी विवाद के लिए न्यायालय दिल्ली ही मान्य होगा।

© लेखक

प्रथम संस्करण : 2019

ISBN 978-93-86835-73-4

प्रकाशक
अनुज्ञा बुक्स
1/10206, लेन नं. 1E, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110 032
e-mail : anuugyabooks@gmail.com • salesanuugyabooks@gmail.com
फोन : 011-22825424, 09350809192
www : anuugyabooks.com

मूल्य : 500 रुपये

आवरण
मीना-किशन सिंह

मुद्रक
अर्पित प्रिंटोग्राफर्स, दिल्ली-32

SANSKRIT KAVYASHASHTRA
Literary Criticism *edited by* Ananad Prakash Tripathi

संस्कृत काव्यशास्त्र के नये प्रतिमानों की खोज

संस्कृत काव्यशास्त्र की महती और सुदीर्घ परम्परा रही है। हमारे संस्कृताचार्यों ने काव्य के विभिन्न पहलुओं को जाँचने-परखने के लिए गम्भीरतापूर्वक चिन्तन-मनन कर अपनी ठोस मान्यताएँ प्रतिष्ठापित की हैं। उन्होंने काव्य के शास्त्रीय मानदण्डों पर विचार करते हुए संस्कृत काव्य के मूल्यांकन के नये प्रतिमानों की खोज का जो सिलसिला वेदों से शुरू किया था वह निरंतर काव्यानुशासन के दायरे में रहते हुए आधुनिक युग तक गतिशील है। वेदव्यास, आचार्यकुंतक, आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्यमम्मट, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य क्षेमेन्द्र तथा पंडितराज जगन्नाथ से होता हुआ आधुनिक काल के आचार्यगण रेवाप्रसाद द्विवेदी, अभिराजराजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्षदेवमाधव, ब्रह्मानन्द शर्मा आदि के काव्यशास्त्रीय चिन्तन की प्रखर और अभिनव परम्परा का एक कालजयी इतिहास है। इन आचार्यों के द्वारा प्रतिष्ठापित काव्यशास्त्रीय धाराणाओं/प्रतिमानों के आधार पर संस्कृत कविता की विशाल ज्ञान राशि को परखना हमारी काव्यशास्त्रीय परम्परा का अनिवार्य हिस्सा है। यूँ कहें कि शास्त्र और कविता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध कविता के जन्मकाल से जुड़ा हुआ है। इसलिए हर समय में काव्य, शास्त्र की कसौटी पर खरा उतरने के लिए प्रतिबद्ध है।

पंडितराज जगन्नाथ तक जो काव्यशास्त्रीय पक्ष आचार्यों के द्वारा रचा गया है वह काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्यप्रयोजन, काव्यात्मा-रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य एवं काव्य के भेद-उपभेद तथा रूपक के भेद-उपभेद के रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन आचार्यों के द्वारा सृजित विषयों को नये आक्षेप और नये विमर्श इत्यादि के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास आधुनिक आचार्यों के द्वारा किया गया है। आधुनिक युग के अनुरूप रचे गये काव्यों के मूल्यांकन के लिए आधुनिक संस्कृत आचार्यों द्वारा अनेक नवीन काव्य विधाओं– हाइकू, लोकगीत, गजल, मुक्तक, निबन्ध, कथा, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनचरित्र, आत्मकथा, यात्रावृतान्त आदि को परखने के लिए नये काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों की खोज करना स्वाभाविक है। आधुनिक संस्कृत साहित्य की आधुनिक विधाओं को काव्यशास्त्रीय अनुशासन में देखना-समझना अपेक्षित है। नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार के

काव्यसत्यालोक में व्यञ्जना 158
शशिकुमार सिंह

काव्यसत्यालोक में प्रतिपादित सत्य 165
माधवी श्रीवास्तव

संस्कृत की अभिनवरचनाधर्मिता : काव्यशास्त्रीय पक्ष 170
सञ्जय कुमार

अभिराजयशोभूषणम् में लोकगीत 181
नीरज कुमार

अभिराजयशोभूषणम् में गलज्जलिका (ग़ज़ल) का स्वरूप 185
सत्य प्रकाश

वागीश्वरीकण्ठसूत्रम् 189
कौशल तिवारी

विंशशताब्द्यां विरचिताः काव्यशास्त्रीय-शोधप्रबन्धाः
(भामहतो मम्मटपर्यन्तम्) 195
राघवेन्द्र शर्मा

सौन्दर्यशास्त्र की भारतीय परम्परा

राधावल्लभ त्रिपाठी

कहा जाता है कि सौन्दर्यशास्त्र नाम से भारतीय परम्परा में पृथक् से कोई शास्त्र नहीं है, जबकि पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र पर प्रचुर चिन्तन हुआ है। कतिपय पश्चिमी प्राच्यविद्याविशारदों ने तो भारत में सौन्दर्यशास्त्र के अभाव के पीछे भारतीयों में सौन्दर्यबोध के कथित अभाव को ही कारण मान लिया है। मैक्समूलर जैसे मनीषी को भी यह ग़लतफहमी थी। दूसरी ओर सौन्दर्यतत्त्व पर पृथक् से विचार करने वाले आधुनिक भारतीय आचार्यों में गोविदचंद्र पांडे, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सुरेंद्र बारलिंगे, नन्ददुलारे वाजपेयी ने भारतीय परम्परा में सौन्दर्यचिन्तन के कथित अभाव को मिथ्यावाद ही माना है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने नया साहित्य-नये प्रश्न में हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स के लेखक बर्नार्ड बोसाँके और वर्ल्ड ड्रामा के प्रणेता एलार्डिस निकाल की भारत में सौन्दर्यशास्त्र की परम्परा के अभाव को लेकर की गई टिप्पणियों पर गम्भीर आपत्ति जताई है।[1]

हमारे यहाँ अलग से सौन्दर्य का शास्त्र नहीं रहा—यह सत्य बात भी सत्य नहीं है। अलंकार नाम से एक समग्र सौन्दर्यशास्त्र प्राचीन भारत में था, जिसे आगे चलकर साहित्यशास्त्र और कलाशास्त्रों में समाहित कर लिया गया। जिस समाज के जीवन में हर स्तर पर सौन्दर्य रचा-बसा हो, सौन्दर्य परमतत्त्व और समस्त सृष्टि में अविभाज्य या समवेत अंगीकार किया गया हो, वहाँ अलग से सौन्दर्य पर चर्चा न की जाए—यह स्वाभाविक है। पृथक् से सौन्दर्य पर विवेचन की आवश्यकता उन समाजों में अधिक अनुभव की जाएगी, जहाँ सौन्दर्य को जीवन और सृष्टि से अलग करके देखा गया हो। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि पश्चिम की क्रिश्चियन परम्परा में माना गया कि सृष्टि का आरम्भ ही पाप भावना या पापबोध से हुआ है। इसके अनुसार मनुष्य मूलतः पाप से संपृक्त है। आद्य मानव के स्वर्ग से च्युत होने का कारण उसका पापबोध रहा है। उसके विपरीत भारतीय बोध सृष्टि को परमात्मा के द्वारा रची ऐसी कविता के रूप में देखता है, जो अजर-अमर है। वैदिक ऋषि कहते हैं—"देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।" यह वैदिक विश्वबोध ही है जिसके कारण भागवत आदि पुराण बार-बार कहते हैं कि देवता इस धरती पर उतरकर यहाँ के रस और सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए लालायित रहते हैं।[2] हमारे समय

काव्यसत्यालोक में व्यञ्जना

शशिकुमार सिंह

संस्कृत-काव्यशास्त्र की आधुनिक चिन्तन धारा में आचार्य ब्रह्मानन्द शर्मा एवं तद्प्रणीत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'काव्यसत्यालोक' का अन्यतम स्थान है। 'काव्यसत्यालोक' समकालीन काव्यशास्त्रीय परम्परा का श्रेष्ठ निदर्शन है, जिसमें आचार्य शर्मा ने अपनी सत्यान्वेषिणी श्रमशीलता तथा काव्यतत्त्व विमर्शिणी शक्तिमत्ता के अनुपम सौन्दर्य को उपस्थापित किया है। काव्यसत्यालोक में उन्होंने पूर्व प्रतिपादित अवधारणाओं का न केवल समुचित समादर किया है अपितु उसमें अपनी नवीन उद्भावनाओं का उन्मेष कर उसे और अधिक प्रभवनशील एवं उपादेय बनाया है। आचार्य शर्मा ने जहाँ एक ओर प्राच्य काव्य-सिद्धान्तों रस अलंकार ध्वनि आदि पर विवेचनात्मक विमर्श प्रस्तुत किया है तो वहीं दूसरी ओर सभी के मूल में सत्य की सत्ता को अनिवार्य एवं अपरिहार्य बताया है। उनका स्पष्ट उद्घोष है कि 'सत्यं हि शरणं मम'[1] अर्थात् एक मात्र सत्य ही मेरे लिए शरण है। आचार्य ब्रह्मानन्द शर्मा ने काव्य में लोकसत्य की विद्यमानता को अभीष्टतम माना है। उनकी दृष्टि में लोकसत्य काव्य का प्राणप्रद धर्म है। इसे कदापि उपेक्षणीय नहीं माना जा सकता।

काव्येसत्यानुभूतिर्या, सा न हेया कदाचन।
इयमात्मा हि काव्यस्य, इयमस्मिन् समीहिता।।[2]

काव्य में सत्य की अनुभूति ही सर्वाधिक अपेक्षित वस्तु होती है। इस लोकगत सत्य का जब सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से विवेचन होता है तो सत्यानुभूति में और प्रकृष्टता आ जाती है तथा काव्य समधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है। आचार्य शर्मा का मानना है कि काव्य-सत्य के वर्णन में इस सूक्ष्मता का संधारण विभिन्न प्रकार के उपायों से सम्भव हो पाता है। इन उपायों की संख्या तो यद्यपि बहुत अधिक होती है, परन्तु प्रमुख रूप से सात प्रकार के उपाय महत्त्वपूर्ण हैं, जो काव्यसत्यालोक में इस प्रकार हैं–

1. सूक्ष्मधर्मउपादान
2. सादृश्य विधान
3. समर्थनोपादान
4. हेतूपादान
5. विरोधोपादान

6. व्यापार विशेष
7. भावयोग।

इनमें से प्रथम पाँच उपायों को आचार्य शर्मा अलंकार कहते हैं जो क्रमशः स्वभावोक्ति, उपमा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग एवं विरोधालङ्कार के संकेतक हैं।

सूक्ष्मधर्मादयो येऽत्र, उपाया, केऽपि दर्शिताः।
अलंकाराभिधानं ते, भजन्त इति मे मतिः।।[3]

व्यापार विशेष नामक षष्ठ उपाय व्यञ्जना–व्यापार का तथा भाव-योग नामक सप्तम उपाय काव्य में भाव एवं रस आदि के सूक्ष्म वर्णन का परामर्शक है। काव्यगत लोक-सत्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन का हेतुभूत तत्त्व व्यञ्जना व्यापार मूलतः तो चेतनागत होता है परन्तु कर्णविवरों द्वारा शब्द का ज्ञान होने के बाद ही सत्यगत सूक्ष्म अर्थ की प्रतीति होती है। अतः यह प्रतीती शब्द के जिस विशेष व्यापार द्वारा सम्भव हो पाती है वह व्यापार ही व्यञ्जना व्यापार होता है। व्यञ्जना व्यापार की यह सूक्ष्म स्थिति वाष्पवत् होती है। जो एक विशेष शान्ति से समन्वित होती है, व्यञ्जना व्यापार उसी शान्ति का प्रतिपादक होता है।

किञ्च व्यापारस्य यस्मिन्नधिष्ठाने स्थितिर्वाष्पवत,
तत्र काचन शक्तिः स्वीकार्या।
तस्याः शक्तेरेष व्यापारः परिणामः।।[4]

यद्यपि प्राचीन काल से ही शब्द की विविध शक्तियां अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रमुख मीमासेय विषयों में रही है। व्यंजना शक्ति अथवा व्यंजना व्यापार काव्य का श्रेष्ठत्व निर्धारक आधारभूत तत्त्व है। जिसमें जितना अधिक व्यङ्ग्य वह उतना ही श्रेष्ठ काव्य कहा जाता है। यही कारण है कि व्यङ्ग्य-व्यंजक– व्यंजना की विशद चर्चा संस्कृत के विभिन्न काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होती है।

प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में आचार्य आनन्दवर्धन ने व्यङ्ग्य प्रधान काव्य विशेष, जिसे ध्वनि भी कहा जाता है, का वर्णन करते हुए कहा है–

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।[5]

अर्थात् जहाँ अर्थ स्वयं को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत कर ''व्यंङ्ग्य अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं'' वही काव्य विशेष विद्वानों द्वारा ध्वनि कहा जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं कि इस व्यङ्ग्य अर्थ का अभिव्यंजन जिस शब्द शक्ति के द्वारा किया जाता है वह शब्द शक्ति और कोई नहीं व्यंजना व्यापार ही है–

'व्यङ्ग्योऽर्थस्तद् व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन न शब्दमात्रम्।'[6]

प्रसिद्ध काव्यशास्त्रज्ञ साम्देवतावतार आचार्य मम्मट के द्वारा भी अपने ग्रंथ